VOL- VIII ISSUE- IX SEPTEMBER 2021 PEER REVIEW e-JOURNAL IMPACT FACTOR 7.149 ISSN 2349-638x

प्रारम्भिक आधुनिक भारत में मुस्लिम समुदायों में विभिन्नता और एकता

सन्ध्या शर्मा,
प्रवक्ता,
विवेकानन्द महाविद्यालय,
दिल्ली विश्वविद्यालय
drsandhyasharma@gmal.com

सरांश

भारतीय इतिहास लेखन व राजनीति में साम्प्रदायिकता को हिन्दू–मुस्लिम संदर्भ में ही समझा जाता है। प्रस्तुत लेख में मुस्लिम समाज में व्याप्त अन्तर, विभिन्नताएँ और मतभेदों को स्पष्ट करने की चेष्टा की गई है। प्रारम्भिक आधुनिक काल में जब स्वतन्त्रता आन्दोलन में हिन्दू तथा मुस्लिम प्रतिनिधि अपने समुदाय को संगठित कर रहे थे, इस्लाम धर्म का अनुसरण करने वाले लोगों में अनेक विभिन्नताएँ तथा मतभेद थे। बाम्बे इस्लाम तथा पारसी पंचायतें धार्मिक तथा सामाजिक कारकों के माध्यम से अपने समुदाय को आर्थिक, शैक्षिक तथा सामाजिक रूप से संगठित करने लगे थे फिर भी इनके आन्तरिक मतभेद सदैव चलते रहे हैं। मेरा तर्क है कि 'हिन्दू' या 'मुस्लिम' भारत में इस्लाम के आगमन से ही अनेक धाराओं और शाखाओं में बटें थे अत: इनकों साम्प्रदायिकता के संदर्भ में समरूप नहीं समझा जाना चाहिए।

प्रारम्भिक मध्यकाल में ७१२ इस्वी में सिन्ध पर अरब के खलीफा के सैनिक कमाडंर ने आक्रमण किया तथा प्राप्त शोधों में इस घटना को धार्मिकता के संदर्भ से समझा गया। यद्यपि इस प्रकार के मतों का खंडन भी किया जा चुका है फिर भी महमूद गजनी तथा मुहम्मद गौरी के आक्रमणों से लेकर दिल्ली सल्तनत तथा मुगल–साम्राज्य के अन्त तक के काल को मुस्लिम काल के रूप में स्वीकृति वर्तमान तक दी जा रही है। स्वतन्त्रता आन्दोलन में हिन्दू तथा मुस्लिम अस्मिताएँ और इनके बीच के अन्तर को राजनैतिक उद्देश्यों के लिए प्रयोग किया गया।[१] विभाजन के बाद भारत के संविधान में अल्पसंख्यकों के रुप में मुस्लिम समुदाय एक पोषित तथा उपेक्षित वर्ग के रुप में उपस्थित रहा। जो भी कदम प्रशासन तथा राजकीय अधिकारियों द्वारा उठाए जाते थे उनमें पितृसत्तात्मक भावना स्पष्ट झलकती थी। वर्तमान में भी 'हिन्दू' तथा 'मुस्लिम' समुदायों को समरुप मानकर राष्ट्रीय अस्मिता से जोड़ने के प्रयास जारी हैं। इसके लिए अनिवार्य है कि हमें इन वर्गों के अन्तरों को स्पष्ट रुप से समझ लेना चाहिए। हिन्दू व 'हिन्दूवाद' पर गहन अध्ययन हुए है और वर्तमान में मुस्लिम समुदायों की समरुपता का भी खंडन किया जा रहा है।

दिल्ली सल्तनत की स्थापना बारहवीं शताब्दी में हुई थी जब तुर्कों ने पृथ्वीराज चौहान को तरायन के युद्ध में हरा दिया था परन्तु उसके पूर्व मुहम्मद बिन कासिम, महमूद गजनी तथा तुर्कों की अस्मिता को भी धार्मिकता से अलग कर उनकी क्षेत्रीय पहचान के रुप में दर्शाया गया।[२] मैने अपने शोध लेखों में ब्रज–भाषा साहित्य के माध्यम से तर्क दिया कि हिन्दू और मुस्लिम अस्मिताएँ राजनैतिक हितों की पूर्ति के लिए प्रयोग की जाती थी।[३] केशव दास विरचित ग्रंथों में कवि मुगल बादशाह अकबर को म्लेच्छ, असुर, यवन तथा बुरे शासक के रुप में दर्शाया गया क्योंकि अकबर का मधुकर शाह तथा उनके पुत्र बीरसिंह देव से राजनैतिक सन्तुलन स्थापित नहीं हो पाया। परन्तु बीरसिंह देव का अकबर के पुत्र जहाँगीर से समझौता होने के बाद

वह 'जगती का इन्द्र' तथा 'दुहूँ दीन का स्वामी' हो जाता है। इसी प्रकार के अनेक संदर्भो से मैंने स्पष्ट किया है कि मुस्लिम व हिन्दू समाज धर्म नहीं अपितु राजनैतिक स्तर पर विभाजित किये जाते थे।

इसके पश्चात् ब्रिटिश काल में हिन्दू–मुस्लिम भेद से भारतीय समाज का विभाजन हुआ और इसके दूरगामी प्रभाव हम आज भी देख रहें है। इस काल में ब्रिटिश इतिहास लेखन में भारतीय इतिहास का काल विभाजन प्राचीन, मध्यकाल तथा आधुनिक काल के दायरे में सीमित कर इन कालों को क्रमश: हिन्दू मुस्लिम तथा ब्रिटिश काल भी माना गया।[४] यह विभाजन राष्ट्रवादी विचारकों की विचारधारा के अनुरुप था। एक ओर मुस्लिम समुदाय सैयद अहमद खान के काल से अपनी एक अलग पहचान बनाने की चेष्टा करने लगे तथा बीसवीं शताब्दी में मुहम्मद अली जिन्हा की 'मुस्लिम लीग' मुस्लिम वर्गो के लिए सक्रिय हुई। हिन्दू महासभाओं के माध्यम से सावरकर के 'हिन्दूत्व' की बृहत् व्याख्या हुई।[५] हमारा विषय यहाँ इन संस्थाओं व वर्गो के स्वतन्त्रता आंदोलन के संदर्भ में अध्ययन करना नहीं है। यह समझना अनिवार्य है कि इन अस्मिताओं को राजनैतिक स्तर पर प्रयोग किया गया और यथार्थ यह है कि हिन्दू व मुस्लिम कभी भी समरुप नहीं थे।

इस संदर्भ में यदि मुस्लिम समुदायों को बाम्बे के संदर्भ में देखा जाए तो नील ग्रीन ने अपनी पुस्तक में तर्कात्मक और गहन अध्ययन किया है।[६] १९०० ईस्वी के आरम्भ से विदेशी बाम्बे में अपने पैर जमा रहे थे। हिन्द महासागर के इर्दगिर्द देशों में बसे मुस्लिम व्यापार के लिए यहाँ बसने लगे थे। इन्होने वहाँ सूती कपड़े, रूई तथा जहाज निर्माण के कारखाने खोले। बॉम्बे में इसके अलावा हैदराबाद, गुजरात से रेलमार्गो से, काबुल, मुल्तान, सिन्ध, लाहौर, मद्रास, मालाबार, दक्कन, अफ्रीका, ईरान व तूरान आदि विभिन्न जगहों से मुस्लिम बाम्बे में बस रहें थे।[६] नील ग्रीन के अनुसार बॉम्बे में ही अनेक बॉम्बे थे जैसे कि ब्रिटिस बॉम्बे, मराठी बॉम्बे तथा पारसी बॉम्बे।[७] इनके साथ साथ अनेक संतो के मुस्लिम चितंको तथा शैक्षणिक सस्थाओं को चुनौती दे रहे थे।

१८४०–१९१५ के बीच बॉम्बे ब्रिटिश साम्राज्य का तीसरा बडा शहर बन चुका था। इसी के साथ मुस्लिम आबादी भी बहुत बढ़ गयी थी। उल्लेखनीय है कि अनेक प्रदेशों से आए मुस्लिमों ने अपने मौहल्लों में अपने समुदायों को संगठित किया। इनकी मस्जिदें भी इनके धार्मिक परिवारों से संचालित होती थीं। एक ओर उद्योग पनप रहे थे तो इन समुदायों के हितों के लिए संघर्ष से अन्तर्विरोध पैदा हो रहा था। इसी काल में मुहम्मद अली जिन्हा मुस्लिम लीग के राष्ट्रीय अध्यक्ष बने और उन्होंने मुस्लिम एकता के लिए बॉम्बे में प्रयास आरम्भ किया।[८] अन्तरराष्ट्रीय स्तर पर कौमी एकता के लिए तुर्की में हुए खिलाफत आन्दोलन में भरपूर योगदान दिया गया। ग्रीन का विचार है कि १९२०–२१ तक मुस्लिम लीग का उद्देश्य एक नया राष्ट्र बनाने या अंग्रेजों के राज को हटाने का नहीं था बल्कि इस्लामी प्रचार था। धर्म और राजनीति में अन्तर रखा जा रहा था। धार्मिकता के बदलते हुए स्वरुप से परम्परा तथा संशोधन के बीच टकराव हुआ और अनेक मुस्लिम सुधारवादी आंदोलन भी होने लगे थे। मुस्लिम समाज विश्वस्तरीय सस्थाओं के अलावा छोटी–छोटी स्थानीय संस्थाओं में विभक्त हो गया।

तकनीकी विकास के कारण बॉम्बे इस्लाम का प्रचार अधिक हुआ। ब्रिटिश सरकार धार्मिक मामलों में हस्तक्षेप नहीं करती थी इसलिए प्रचार–प्रसार अधिक हुआ। फिर भी लखनऊ के मुस्लिम समुदाय की तरह बॉम्बे में कोई वक्फ बोर्ड नहीं बना। क्रिस्टियन मिशनरियों से प्रतिस्पर्धा के कारण इन बहुलवादी धार्मिक प्रवृत्तियों को बल मिला। ग्रीन के अनुसार अपनी मातृभूमि छोडकर आए मुस्लिमों ने काफी एकता दिखाई फिर भी विभाजन खत्म नहीं हुआ। इसका कारण इन सभी वर्गो के व्यवहारिक रीति–रिवाज में अन्तर था। कुछ वर्ग बॉम्बे की आधुनिकता के परिवेश में ढलने लगे। अब इस्लाम पहले इस्लाम से भिन्न हो गया। यह

धार्मिकता किस प्रकार की थी यह विचारणीय विषय है। तीर्थ, धार्मिक कर्म–कांड, साहित्य अध्ययन, प्रचारकों द्वारा बनाए गए धार्मिक सिद्धान्त व नियम, आत्मिक व नैतिक तुष्टि, शारीरिक उपचार तथा चमत्कारी धर्मगुरूओं ने नई धार्मिकता का सृजन किया।[९] एक ओर आधुनिकतावादी प्रचारक थे तो दूसरी ओर पारिवारिक अंजुमन व दरगाहें थीं। इसी प्रकार जमात एक पारम्परिक संस्था थी जिसमें उत्तराधिकार व चयन को लेकर मतभेद थे। मजारें सूफी पीरों के वशंज चलाते थे तथा भाई चारे से इनकी प्रसिद्वि फैलती थी। जहाँ छपाई के माध्यम से कुछ संस्थाओं का प्रचार होता था, पीरों के चमत्कार उन्हें प्रसिद्व करते थे। बॉम्बे इस्लाम ने न केवल मुस्लिमों को प्रभावित किया बल्कि अन्य धर्मो ने भी इसका अनुसरण किया। इस प्रकार बॉम्बे के मुस्लिमों को अनेक रूपों में समझा जाना अनिवार्य है। इसके अतिरिक्त प्रवासी मुस्लिमों ने अपने देश या प्रदेश के ग्रामीण तीर्थ–स्थलों के उपक्रम भी बनाने आरम्भ कर दिए थे। मुहर्रम के जलसों में केवल शिया ही नहीं बल्कि सभी वर्गो के लोग थे। मज़ारें भी बॉम्बे में बहुत थीं। यहाँ संगीत केवल मनोरंजन के लिए नहीं था बल्कि पीर बाबा हवशी की मजार पर तो दमाली तथा चिनूगी नर्तक नाचते हुए सिद्वि प्राप्त कर लेते थे। इसी प्रकार पैड्रो शाह की मजार का भी इस्लाम के सार्वजनिक परिसर का विस्तार करने में महत्वपूर्ण योगदान रहा। इन समुदायों की विषमताओं और जटिलताओं को ध्यान में रखते हुए बॉम्बे इस्लाम व मुस्लिम समुदायों को समरुप नहीं कहा जा सकता।

माडर्न एशियन स्टडीस नामक जनरल ४, ३ (१९७०) के अंक में छपे अपने लेख में क्रिस्टिन डॉबिन में लिखती हैं कि मध्य काल से ही गुजराती व्यापारिक वर्ग ने अपने को व्यापारिक संघो में सगंठित कर लिया था तथा अपनी पंचायत बना ली थी। इनके माध्यम से ये व्यापार को सुचारू रुप से चलाते थे। ये अपनी जातीय पहचान भी संघों के माध्यम से बनाए रखते थे। १८ वीं और १९ वीं शताब्दी में इनका बॉम्बे में बस जाना अनेक प्रकार की चुनौतियों का कारण बना। बॉम्बे शहर की आधुनिकता में उनकी ग्रामीण पहचान पीछे रह गई। इन समुदायों के मुखियाओं की ताकत कानूनी नियमों के कारण और भी कम हो गई और अपने समुदाय के लोगों पर इनका नियन्त्रण कम होने लगा परन्तु इनके कारण इन समुदायों में अपनी अस्मिता के प्रति जागरूकता बढने लगी। ये किसी भी समस्या का सामना करने के लिए अपने समाज को पुनर्गठित करने लगे।

इसी सदंर्भ में १८ वीं शताब्दी से पारसी पंचायत को समझा जा सकता है पारसियों के अधिक आगमन से बॉम्बे की सरकार पंचायत को शिकायत करती थी कि कुछ पारसी अपने समाज के नियमों का उल्लघंन कर रहे है। यद्यपि पचांयत नियमों को पुन: बदल सकती थी परन्तु पचांयत का पुनर्गठन मुश्किल था। सदस्यों के मरने के बाद उनके बेटों को सदस्यता मिल जाती जो बहुत बार सही नहीं होता था। पचांयत सम्भ्रान्त लोगों के नियन्त्रण में थी और बडे व्यापारिक परिवार इसे चलाते थे। १८३७ में एक सम्भ्रात बामाजी होरमास जी ने सुप्रीम कोर्ट के जज से विमर्श करने गया कि पचांयत को कैसे मजबूत किया जाए। कुछ सदस्यों ने गवर्नर जनरल को भी याचिका दी कि उनके पारम्परिक नियम कमजोर हो गए है और सरकार उन्हें मजबूत करने में सहायता करें।

परन्तु सरकार कुछ ना कर सकी और पारसियों के बीच शिक्षा व गुजराती प्रिंटिंग प्रैस के माध्यम से और कमजोर हो गयी। १८४४–४५ मानक जी खरदेश जी ने, जो कि बहुत ही सम्भ्रान्त पचांयत के सदस्य थें, बॉम्बे टाइम्स में एक लेख छापा। इसमें उन्होनें कुछ सदस्यों की गलतियों को उजागर किया। आरोप सदस्यों के दो विवाह, अवैध सन्तानों तथा व्यापार में पारदर्शिता के थे। इससे पचांयत की गरिमा और कम हो गई और समाज व पत्रकारिता के परिसर में उन्हें कमजोर तथा आदिम समझा जाने लगा।

क्यूँकि पारसियों का कोई दैविक नियम पचांयत पर लागू नहीं था इसलिए पचांयत बंदोबस्त

के आधार पर चलती थी। बम्बई में सुप्रीम कोर्ट की स्थापना के बाद असन्तुष्ट पारसी पचांयत की जगह कोर्ट से कानूनी सहायता ले सकते थे। समस्या थी कि कोर्ट के पास पारसियों के उत्तराधिकार सम्बन्धी नियम उपलब्ध नहीं थे। अत: कोर्ट सिविल लॉ का इस्तेमाल करते थे। अत: अब मृतक की सम्पत्ति का १/३ हिस्सा उसकी विधवा व बाकी सारी संतानों में समान बाँटा जाने लगा। पारसियों ने इसे स्थायी उपाय नहीं माना क्योंकि बेटे व बेटियों के अधिकार समाज में समान नहीं थे। विवाह और तलाक में भी पारसी पचांयत अपने निर्णय नहीं लगा पा रही थी।

१८५० के दशक में पारसी समुदाय ने एलफिन्स्टोन कॉलेज के स्नातकों से पारसी धार्मिक व सास्कृतिक शोध करवाए। नौरोजी फरदून जी अपने पारसी समुदाय पर मिशनरी के हस्तक्षेप के सख्त खिलाफ थे तथा वे पारसी गरिमा पर लिखने वाले लेखको में नाम प्राप्त कर रहे थे। पारसियों पर शोध को वे यूरोपियन के हाथ में नहीं देना चाहते थे। अत: प्राचीन ईरानी साहित्य पर गंभीर शोध आरम्भ हुए। १८५५ में पारसी लॉ एसोसियशन बनाई गई। इसका काम पारसियों के लिए कानून को परिभाषित करना था। फिर एक पारसी संसद आयोजित की गई परन्तु इसमें भी सम्पत्ति व सम्मान को प्राथमिकता दी गई। उत्तराधिकार व सम्पत्ति के बँटवारे के नए नियम बनाए गए जो कि पारसी लोगों के समकालीन नियमों से भिन्न थे। इन नियमों को लागू करने के लिए एक ट्रिब्यूनल जो कि पचांयत जैसी ही थी, बनाया गया। इसके १२ सदस्य पाँच साल के लिए नियुक्त होने थे। इसके निर्णय को कानूनी वैधता दी गई। इस प्रकार बुद्धिजीवी पारसियों ने पंचायत को पूर्णत समाप्त करने की कोशिश की। १८६० में उन्होनें धोषणा की कि पारसी पंचायत नाम की संस्था अब नहीं है। परन्तु इन ट्रिब्यूनल्य की कार्यकारिता में कमी के बाद पंचायतों का पुर्नगठन करने की बात उठी। इसके बड़े–बड़े सम्भ्रान्त पारसियों ने हस्ताक्षर किए। हाँलाकि पचांयत को अब कोर्ट की अपील का सामना करना पड़ सकता था। फिर से शादी व तलाक के नियम बने और फिर पचांयत पर आरोप लगने लगे।

सुधारवादी पारसियों के समाचार पत्र तेंज हवजिंत में आलोचना छपी। काउंसिल ने १८६५ में पचांयत को रद्द करके पारसी में ट्रिमोनियन कोर्ट गठित की। ये कोर्ट तीनों प्रेसिडेंसी शहरों में (कलकत्ता, मद्रास, बाम्बे) में भी बनी तथा आवश्यकता के अनुसार डिस्ट्रिक्ट में भी खोली गई।[१२] इनमें एक हाई कोर्ट जज की अध्यक्षता में पारसी प्रतिनिधि जीवन भर के लिए नियुक्त किए गए परन्तु इससे भी समस्याओं का अन्त नहीं हुआ। सरकार ने इसमें २० प्रतिनिधि निश्चित किए परन्तु ये सभी सम्भ्रान्त थे और पारसी बुद्विजीवियों को एक भी सीट नहीं दी गई। Rast-Goftar अखबार ने चेतावनी दी थी कि कोर्ट पुरानी पचांयत ही बन जाएगी।

१८४० में पारसी पचांयत ने ऐसे अनेक सस्थान खोले जो पारसियों को शहरी जीवन की समस्याओं सें छुटकारा दिलाएँ परन्तु इन सभी की कार्यकारिणी समितियों में पचांयत के जैसे ही नियम बनाए गए। ये शिक्षा के प्रति सजग सस्थान थे। अपने व्यापारिक पतन को देखते हुए ये शिक्षा में आगे होकर अपने को सम्मानित बनाना एक उपाय था। सरकारी आँकडों में मैट्रिक ग्रेजुएट व सरकारी नौकरी में पारसियों की संख्या बढती गई। जमशेद जी जीजा भाई ने गरीब पारसियों की शिक्षा के लिए पारसी बेनोवेलेन्ट सस्था बनाई क्यूँकि गुजरात के पारसी जुलाहों का व्यवसाय नष्ट हो गया था। ये सस्था १२ लोगों के चयन से चलती थी जिसमें पुरानी पचांयत के सदस्य थे। धीरे–धीरे ये सस्था पुरानी पचांयत के अन्य कार्यो को भी अपने दायरें में लाने लगी तथा विवाह सम्बन्धी मामले देखने लगी। इसके पाँच सदस्य ट्रस्टी होने के नाते अपना प्रभाव दिखाते थे। बाद मेंइसे पारसी चैरिटी फंड के नाम से जाना जाने लगा। ये गरीबों तथा Towers of silence को देखते थे।

सम्भ्रान्त पारसी मालाबारी पारसियों के भविष्य को लेकर चिन्तित थे। उनका विचार था कि

बॉम्बे के हिन्दू व मुसलमानों के कारण उनकी प्रतिष्ठा कम होने लगी है।[१४] उन्होंने लिखा की फंड का सदुपयोग नहीं हो रहा था जबकि हिन्दू/मुस्लिम समुदाय के नेता अपने समुदाय का विकास कर रहे थे। धीरे–धीरे पारसी स्कूल खोले गए परन्तु मालाबारी को लगता था कि पारसियों का बंगाली व मराठा हिन्दूओं की तरह कोई कॉलेज, कला विद्यालय या बिज़नेस स्कूल नहीं था। मालाबारी के इन विचारों से पता चलता है कि वे अपने समुदाय के प्रति सजग थे।

फिर अन्य संस्थाएँ पारसियों को ईरान में शिक्षा, वृद्धों को सहायता, पूजा के स्थलों की मरम्मत आदि के लिए फंड देने लगीं परन्तु बॉम्बे में पारसियों को लगा कि अपनी पंचायत पारसियों को सरकार से तथा अन्य समुदायों से सुरक्षित रखने के लिए जरूरी थी। जमशेद जी जीजा भाई ने अपने सम्पर्क सूत्रों से लाभ उठा कर प्रयास किए पर उनका पुत्र निजी लाभों को ही देखता था। पंचायत पुन: शक्तिशाली नहीं हो पाई। १८७३ में पारसियों के Tower of Silence (कब्रगाह) के पास कुछ लोगों के लिए कोई पंचायत नहीं थी।[१५] पंचायत के बाद जो संस्थाएं बनीं थीं उनसे उम्मीद की गई।

द्वितीय जमशेद जी के भाई सोराब जी जमशेद जी ने पारसी अतीत को पुन: जीवित करने के लिए लेख लिखे। अन्य सम्भ्रात लोगों की सहायता से ५००० पारसियों के हस्ताक्षर करा के इन्होंने एक याचिका बनाई जिसे सार्वजनिक करके पारसियों पर होने वाले अन्याय को उभारा। इस आंदोलन में पाँच सम्भ्रान्त पारसी वैचारिक मतभेद से अलग हुए तथा समाचार पत्रों में इनकी फूट को सार्वजनिक किया। फिर भी २००० पारसियों ने Tower of Silence के केस के विरोध में प्रदर्शन किया। १८७४ में पारसियों व मुस्लिम के दंगो में ठवउइंल के गवर्नर ने पारसियों को दंगें के लिए जिम्मेदार ठहराया। फिरोजशाह मेहता ने पारसियों की मीटिंग बुलानी चाही पर आन्तरिक झगडों के कारण ना हो सकी।[१६]

फिर भी स्पष्ट है कि पारसी अपनी आस्मिता के लिए किसी एक जाने–माने व्यक्ति का नेतृत्व चाहते थे जो उनको संगठित रख सकें। पुरानी पचांयत का यही कार्य था। जीजा भाई परिवार ने इसका दायित्व संभाला था। परन्तु पुराने पारसी परिवारों ने समर्थन नहीं दिया। सारे बुद्विजीवी भी फिरोजशाह मेहता के नेतृत्व में नहीं आए। फिर भी मेहता ने एक मीटिंग बुलाई इसमें एस. एस. बंगााली ने सुझाव रखा कि जमशेद जी के परिवार के सदस्यों को पारसी नेता चुना जाए। ये प्रस्ताव पारित हो गया। अब यह सोचा गया कि पारसी समुदाय भारत की जनसंख्या में विलीन न हो जाए।

इस विवरण से स्पष्ट होता है कि बॉम्बे के अनेक समुदाय अपनी जातीय व धार्मिक आस्मिता को बनाए रखने के लिए सधंर्षरत रहे। लेकिन इस काल में साम्प्रदायिकता को केवल हिन्दू–मुस्लिम के सदंर्भ में ही समझा गया।

संदर्भ

१. पाण्डे, ज्ञानेन्द्र. (१९९०) 'द कंस्ट्रक्शन ऑफ कम्यूनलिज़्म इन कोलोनियल नार्थ इंडिया, दिल्ली : ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रैस, पृ.सं. २०१–३२. और भी देखें, थापर, रोमिला. 'इमेजिन्ड रिलीजियस कम्युनिटीज़', मॉर्डन एशियन स्टडीज, २३ (२), पृ.सं. २०९–२३

२. चट्टोपाध्याय, बी.डी. (१९९८), रिप्रेजेन्टिंग द अदर? संस्कृत सोर्सिस एंड द मुस्लिम्स, अप टू फोर्टीन्थ सेन्चुरी, नई दिल्ली, मनोहर पब्लिशर्स.

३. शर्मा, सन्ध्या (२०१२). रिस्पोंसिस टु रिलीजन एंड पोलिटिक्स : रीति–काल पोयट्री, C.१५५०.१८५०, अध्याय छह राज़िउद्दीन अकील तथा कौशिक रॉय सम्पादित पुस्तक वारफेयर, रिलीजन एंड सोसायटी इन इंडियन हिस्ट्री, नई दिल्ली, मनोहर पब्लिशर्स, पृ.सं. ११७–९८.

४. मिल, जे.एस. हिस्ट्री ऑफ ब्रिटिश इंडिया, wdl.org/item/१७५३८, पृ.सं. १००–०१
५. सावरकर, विनायक दामोदर, १९६९ (प्रथम संस्करण), हिन्दूत्व: हू इज़ ए हिन्दू, बॉम्बे : वीर सावरकर प्रकाशन, ई बुक, आर्काइव, ओ.जी.
६. ग्रीन, नील (२०११) बॉम्बे इस्लाम : द रिलीजियस इकोनोमी ऑफ द वेस्ट इंडियन नेशन, १८४०–१९१५, न्यू यॉर्क : कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रैस, पृ.सं. ५०–५१
७. वही, पृ.सं. ५७
८. वही, पृ.सं. ६४–६६
९. डॉबिन, क्रिस्टीन, द पारसी पंचायत इन बॉम्बे सिटी इन द नाइन्टीन्थ सेंचुरी, मॉडर्न एशियन स्टडीज़ वाल्यूम ४, न. २, १९७०, पृ.सं. १४९–६४
१०. वही, पृ.सं. १५१
११. वही, पृ.सं. १५२
१२. वही, पृ.सं. १५५–५६
१३. वही, पृ.सं. १५७–५८
१४. वही

Aayushi International Interdisciplinary Research Journal
ISSN 2349-638X
www.aiirjournal.com